भगवान् महावीर का जीवन

[एक ऐतिहासिक दृष्टिपात]

वीर-जयंती और निर्वाणतिथि हर साल आती है। इसके उपलक्ष्य में लगभग सभी जैन-पत्र भगवान् के जीवन पर कुछ न कुछ लिखने का प्रयत्न करते हैं। कोई-कोई पत्र महावीराङ्क रूप से विशेष अङ्क निकालने की भी योजना करते हैं। यह सिलसिला पिछले अनेक वर्षों से अन्य सम्प्रदायों की देखादेखी जैन परम्परा में भी चालू है और संभवतः आगे भी चालू रहेगा।

सामयिक पत्र पत्रिकाओं के अलावा भी भगवान् के जीवन के बारे में छोटी बड़ी पुस्तकें लिखने का क्रम वैसा ही जारी है जैसे कि उसकी माँग है। पुराने समय से इस विषय पर लिखा जाता रहा है। प्राकृत और संस्कृत भाषा में जुदे-जुदे समय में जुदे-जुदे स्थानों पर जुदी-जुदी दृष्टि वाले जुदे-जुदे अनेक लेखकों के द्वारा भगवान् का जीवन लिखा गया है और वह बहुतायत से उपलब्ध भी है। नए युग की पिछली एक शताब्दी में तो यह जीवन अनेक भाषाओं में देशी-विदेशी, साम्प्रदायिक-असाम्प्रदायिक लेखकों के द्वारा लिखा गया है। जर्मन-अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, बंगला और मराठी आदि भाषाओं में इस जीवन विषयक छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं और मिलती भी हैं। यह सब होते हुए भी नए वर्ष की नई जयंती या निर्वाणतिथि के उपलक्ष्य में महावीर जीवन पर कुछ नया लिखने की भारपूर्वक माँग हो रही है। इसका क्या कारण है ? सो खासकर समझने की बात है। इस कारण को समझने से यह हम ठीक-ठीक समझ सकेंगे कि पुराने समय से आज तक की महावीर जीवन विषयक उपलब्ध इतनी लिखित मुद्रित सामग्री हमारी जिज्ञासा को तृप्त करने में समर्थ क्यों नहीं होती ?

भगवान् महावीर एक ही थे। उनका जीवन जैसा कुछ रहा हो सुनिश्चित अमुक रूप का ही रहा होगा। तद्विषयक जो सामग्री अभी शेष है उससे अधिक समर्थ समकालीन सामग्री अभी मिलने की कोई संभावना नहीं। जो सामग्री उपलब्ध है उसका उपयोग आज तक के लिखित जीवनों में हुआ ही है तो फिर नया क्या बाकी है जिसकी माँग हर साल जयंती या निर्वाणतिथि के अवसर पर बनी रहती है और खास तौर से संपूर्ण महावीर जीवन विषयक पुस्तक की माँग तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमेशा बनी हुई रहती ही है। ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका वास्तविक उत्तर बिना समझे महावीर जीवन पर कुछ सोचना, लिखना या ऐसे जीवन की लेखकों से माँग करना यह निरा वार्षिक जयंती कालीन व्यसन मात्र सिद्ध होगा या पुनरावृत्ति का चक्र मात्र होगा जिससे हमें बचना चाहिए।

पुराने समय से आज तक की जीवन विषयक सब पुस्तकें और छोटे-बड़े सब लेख प्रायः साम्प्रदायिक भक्तों के द्वारा ही लिखे गए हैं। जैसे राम, कृष्ण, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि महान् पुरुषों के बारे में उस सम्प्रदाय के विद्वानों और भक्तों ने लिखा है। हाँ, कुछ थोड़े लेख और विरल पुस्तकें असाम्प्रदायिक जैनेतर विद्वानों द्वारा भी लिखी हुई हैं। इन दोनों प्रकार के जीवन-लेखों में एक खास गुण है तो दूसरी खास त्रुटि भी है। खास गुण तो यह है कि साम्प्रदायिक विद्वानों और भक्तों के द्वारा जो कुछ लिखा गया है उसमें परम्परागत अनेक यथार्थ बातें भी सरलता से आ गई हैं, जैसी असाम्प्रदायिक और दूरवर्ती विद्वानों के द्वारा लिखे गए जीवन-लेखों में कभी-कभी आ नहीं पातीं। परन्तु त्रुटि और बड़ी भारी त्रुटि यह है कि साम्प्रदायिक विद्वानों और भक्तों का दृष्टिकोण हमेशा ऐसा रहा है कि येन केन प्रकारेण अपने इष्ट देव को सबसे ऊँचा और असाधारण दिखाई देने वाला चित्रित किया जाए। सभी सम्प्रदायों में पाई जाने वाली इस अतिरंजक साम्प्रदायिक दृष्टि के कारण महावीर, मानव महावीर न रहकर कल्पित देव-से बन गए हैं जैसा कि बौद्ध परम्परा में बुद्ध और पौराणिक परम्परा में राम-कृष्ण तथा क्रिश्च्यानिटी में क्राइस्ट मानव मिट कर देव या देवांश बन गए हैं।

इस युग की खास विशेषता वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण है। विज्ञान और इतिहास सत्य के उपासक हैं। वे सत्य के सामने और सब बातों को वृथा समझते हैं। यह सत्यगवेषक वृत्ति ही विज्ञान और इतिहास की प्रतिष्ठा का आधार है। इसलिए इन दोनों की लोगों के मन के ऊपर इतनी अधिक प्रभावशाली छाप पड़ी है कि वे वैज्ञानिक दृष्टि से अप्रमाणित और इतिहास से असिद्ध ऐसी किसी वस्तु को मानने के लिए तैयार नहीं। यहाँ तक कि हजारों वर्षों से चली आने वाली और मानस में स्थिर बनी हुई प्राणप्रिय मान्यताओं को भी (यदि वे विज्ञान और इतिहास से विरुद्ध हैं तो) छोड़ने में नहीं हिचकिचाते, प्रत्युत वे ऐसा करने में अपनी कृतार्थता समझते हैं। वर्तमान युग भूतकालीन ज्ञान की विरासत को थोड़ा भी बर्बाद करना नहीं चाहता। उसके एक अंश को वह प्रमाण से भी अधिक मानता है; पर साथ ही वह उस विरासत के विज्ञान और इतिहास से असिद्ध अंश को एक क्षण भर के लिए भी मानने को तैयार नहीं। नए युग के इस लक्षण के कारण वस्तु-स्थिति बदल गई है। महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन विषयक लेख पुस्तक आदि कितनी ही सामग्री प्रस्तुत क्यों न हो पर आज का जिज्ञासु उस सामग्री के बड़े ढेर मात्र से सन्तुष्ट नहीं। वह तो यह देखना चाहता है कि इसमें कितना तर्क बुद्धि-सिद्ध और कितना इतिहास-सिद्ध है? जब इस वृत्ति से वह आज तक के महावीर-जीवनविषयक लेखों को पढ़ता है, सोचता है तब उसे पूरा संतोष नहीं होता। वह देखता है कि इसमें सत्य के साथ कल्पित भी बहुत मिला है। वह यदि भक्त हो तो किसी तरह से अपने मन को मना ले सकता है; पर वह दूसरे तटस्थ जिज्ञासुओं का पूरा समाधान कर नहीं पाता। वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण का प्रभाव इतना अधिक गहरा पड़ा है कि खुद महावीर के परम्परागत अनुयायियों को भी अपनी नई पीढ़ी का हर बात में समाधान करना मुश्किल हो गया है। यही एक मात्र वजह है कि चारों ओर से महावीर के ऐतिहासिक जीवन लिखे जाने की मांग हो रही है और कहीं-कहीं तदर्थ तैयारियाँ भी हो रही हैं।

आज का कोई तटस्थ लेखक ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर जीवन लिखेगा तो उसी सामग्री के आधार से लिख सकता है कि जिस सामग्री के आधार से पहले से आज तक के लेखकों ने लिखा है। फर्क यदि है या हो सकता है तो दृष्टिकोण का। दृष्टिकोण ही सचाई या गैर-सचाई का एक मात्र प्राण है और प्रतिष्ठा का आधार है। उदाहरणार्थ महावीर का दो माता और दो पिता के पुत्र रूप से प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन है। इसे साम्प्रदायिक दृष्टि वाला भी लेता है और ऐतिहासिक दृष्टि वाला भी। पर इस असंगत और अमानवीय दिखाई देने वाली घटना का खुलासा साम्प्रदायिक व्यक्ति एक तरह से करता है और ऐतिहासिक व्यक्ति दूसरी तरह से। हजारों वर्ष से माना जाने वाला उस असंगति का साम्प्रदायिक खुलासा लोक-मानस में इतना घर कर गया है कि दूसरा खुलासा सुनते ही वह मानस भड़क उठता है। फिर भी नई ऐतिहासिक दृष्टि ने ऐसी स्थिति पैदा की है कि उस चिर परिचित खुलासे से लोक-मन का अन्तस्तल जरा भी सन्तुष्ट नहीं। वह तो कोई नया बुद्धिगम्य खुलासा पाना चाहता है या उस दो माता, दो पिता की घटना को ही असंगत कह कर जीवन में से सर्वथा निकाल देना चाहता है। यही बात तत्कालजात शिशु महावीर के अंगुष्ठ के द्वारा मेरु-कम्पन के बारे में है या पद-पद पर महावीर के आसपास उपस्थित होने वाले लाखों-करोड़ों देव-देवियों के वर्णन के बारे में है। कोई भी तर्क और बुद्धि से मानव-जीवन पर विचार करने वाला ऐसा नहीं होगा जो यह मानने को तैयार हो कि एक तत्काल पैदा हुआ बालक या मल्लकुस्ती किया हुआ जवान अपने अँगूठे से पर्वत तो क्या एक महती शिला को भी कँपा सके! कोई भी ऐतिहासिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह मान नहीं सकता और साबित नहीं कर सकता कि देवसृष्टि कहीं दूर है और उसके दिव्य सत्त्व किसी तपस्वी की सेवा में सदा हाजिर रहते हैं। ये और इनकी जैसी दूसरी अनेक घटनाएँ महावीर जीवन में वैसे ही आती हैं जैसे अन्य महापुरुषों के जीवन में। साम्प्रदायिक व्यक्ति उन घटनाओं को जीवनी लिखते समय न तो छोड़ सकता है और न उनका चालू अर्थ से दूसरा अर्थ ही लगा सकता है। इस कारण से वह महावीर की जीवनी को नई पीढ़ी के लिए प्रतीतिकर नहीं बना सकता। जब कि ऐतिहासिक व्यक्ति कितनी ही असंगत दिखाई देने वाली पुरानी घटनाओं को या तो जीवनी में स्थान ही नहीं देगा या उनका प्रतीतिकर अर्थ लगाएगा जिसे सामान्य बुद्धि भी समझ और मान सके। इतनी चर्चा से यह भलीभांति जाना जा सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण असंगत दिखाई देने वाली जीवन घटनाओं को ज्यों का त्यों मानने को तैयार नहीं, पर वह उन्हें बुद्धिग्राह्य कसौटी से कस कर सचाई की भूमिका पर लाने का प्रयत्न करेगा। यही सबब है कि वर्तमान युग उसी पुरानी सामग्री के आधार से, पर ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे गए महावीर जीवन को ही पढ़ना-सुनना चाहता है। यही समय की माँग है।

महावीर की जीवनी में आनेवाली जिन असंगत तीन बातों का उल्लेख मैंने किया है उनका ऐतिहासिक खुलासा किस प्रकार किया जा सकता है इसे यहाँ बतला देना भी जरूरी है—

मानव-वंश के तो क्या पर समग्र प्राणी-वंश के इतिहास में भी आज तक ऐसी कोई घटना बनी हुई विदित नहीं है जिसमें एक संतान की दो जनक माताएँ हों। एक सन्तान के जनक दो-दो पिताओं की घटना कल्पनातीत नहीं है पर दो जनक माताओं की घटना का तो कल्पना में भी आना मुश्किल है। तिस पर भी जैन आगमों में महावीर की जनक रूप से दो माताओं का वर्णन है। एक तो क्षत्रियाणी सिद्धार्थपत्नी त्रिशला और दूसरी ब्राह्मणी ऋषभदत्तपत्नी देवानन्दा। पहिले तो एक बालक की दो जननियाँ ही असम्भव तिस पर दोनों जननियों का भिन्न-भिन्न पुरुषों की पत्नियों के रूप से होना तो और भी असम्भव है। आगम के पुराने भागों में महावीर के जो नाम मिलते हैं उनमें ऐसा एक भी नाम नहीं है जो देवानन्दा के साथ उनके माता-पुत्र के संबन्ध का सूचक हो फिर भी भगवती[1] जैसे महत्त्वपूर्ण आगम में ही अपने मुख्य गणधर इन्द्रभूति को संबोधित करके खुद भगवान् के द्वारा ऐसा कहलाया गया है कि—यह

---

१. भगवती शतक ६ उद्देश ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवानन्दा मेरी जननी है इसी से मुझे देखकर उसके थन दूध से भर गए हैं और हर्ष-रोमाञ्च हो आए हैं। भगवती[1] में दूसरी जगह देवों की गर्भापहरण-शक्ति का महावीर ने इन्द्रभूति को लक्षित करके वर्णन किया है पर उस जगह उन्होंने अपने गर्भापहरण का कोई निर्देश तक नहीं किया है। हाँ, महावीर के गर्भापहरण का वर्णन आचारांग के अन्तिम भाग में है पर वह भाग आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार ही कम से कम महावीर के अनन्तर दो सौ वर्ष के बाद का तो है ही। ऐसी स्थिति में किसी भी समझदार के मन में यह प्रश्न हुए बिना रह नहीं सकता कि जब एक सन्तान की एक ही माता सम्भव है तब जननी रूप से महावीर की दो माताओं का वर्णन शास्त्र में आया कैसे? और इस असंगत दिखाई देने वाली घटना को संगत बनाने के गर्भ-संक्रमण—जैसे बिल्कुल अशक्य कार्य को देव के हस्तक्षेप से शक्य बनाने की कल्पना तक को शास्त्र में स्थान क्यों दिया गया? इस प्रश्न के और भी उत्तर या खुलासे हो सकते हैं पर मुझे जो खुलासे संभवनीय दिखते हैं उनमें से मुख्य ये हैं—

१—महावीर की जननी तो ब्राह्मणी देवानन्दा ही है, क्षत्रियाणी त्रिशला नहीं।

२—त्रिशला जननी तो नहीं है पर वह भगवान् को गोद लेने वाली या अपने घर पर रख कर संवर्धन करने वाली माता अवश्य है।

अगर वास्तव में ऐसा ही हो तो परम्परा में उस बात का विपर्यास क्यों हुआ और शास्त्र में अन्यथा बात क्यों लिखी गई?—यह प्रश्न होना स्वाभाविक है।

मैं इस प्रश्न के दो खुलासे सूचित करता हूँ—

१—पहिला तो यह कि त्रिशला सिद्धार्थ की अन्यतम पत्नी होगी जिसे अपना कोई औरस पुत्र न था। स्त्रीसुलभ पुत्रवासना की पूर्ति उसने देवानन्दा के औरस पुत्र को अपना बना कर की होगी। महावीर का रूप, शील और स्वभाव ऐसा आकर्षक होना चाहिए कि जिसके कारण त्रिशला ने अपने जीते जी उन्हें उनकी सहज वृत्ति के अनुसार दीक्षा लेने की अनुमति दी न होगी। भगवान् ने भी त्रिशला का अनुसरण करना ही कर्तव्य समझा होगा।

२—दूसरा यह भी संभव है कि महावीर छोटी उम्र से ही उस समय ब्राह्मण-परंपरा में अतिरूढ़ हिंसक यज्ञ और दूसरे निरर्थक क्रिया-काण्डों वाले कुलधर्म से विरुद्ध संस्कार वाले—त्याग प्रकृति के थे। उनको छोटी उम्र में ही किसी निर्ग्रन्थ-

---

१. भगवती शतक ५ उद्देश ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा के त्यागी भिक्षु के संसर्ग में आने का मौका मिला होगा और उस निर्ग्रन्थ संस्कार से साहजिक त्यागवृत्ति की पुष्टि हुई होगी।

महावीर के त्यागाभिमुख संस्कार, होनहार के योग्य शुभ लक्षण और निर्भयता आदि गुण देखकर उस निर्ग्रन्थ गुरु ने अपने पक्के अनुयायी सिद्धार्थ और त्रिशला के यहाँ उनको संवर्धन के लिए रखा होगा जैसा कि आचार्य हेमचन्द्र को छोटी उम्र से ही गुरु देवचन्द्र ने अपने भक्त उदयन मन्त्री के यहाँ संवर्धन के लिए रखा था। महावीर के सद्गुणों से त्रिशला इतनी आकृष्ट हुई होगी कि उसने अपना ही पुत्र मानकर उनका संवर्धन किया। महावीर भी त्रिशला के सद्भाव और प्रेम के इतने अधिक कायल होंगे कि वे उसे अपनी माता ही समझते और कहते थे। यह संबन्ध ऐसा पनपा कि त्रिशला ने महावीर के त्याग-संस्कार की पुष्टि की पर उन्हें अपने जीते जी निर्ग्रन्थ बनने की अनुमति न दी। भगवान् ने भी माता की इच्छा का अनुसरण किया होगा। खुलासा कोई भी हो—हर हालत में महावीर, त्रिशला और देवानन्दा अपना पारस्परिक संबन्ध तो जानते ही थे। कुछ दूसरे लोग भी इस जानकारी से वंचित न थे। आगे जाकर जब महावीर उग्र-साधना के द्वारा महापुरुष बने तब त्रिशला का स्वर्गवास हो चुका था। महावीर स्वयं सत्यवादी सन्त थे इसलिए प्रसंग आने पर मूल बात को नहीं जाननेवाले अपने शिष्यों को अपनी असली माता कौन है इसका हाल बतला दिया। हाल बतलाने का निमित्त इसलिए उपस्थित हुआ होगा कि अब भगवान् एक मामूली व्यक्ति न रहकर बड़े भारी धर्मसंघ के मुखिया बन गए थे और आस-पास के लोगों में बहुतायत से यही बात प्रसिद्ध थी कि महावीर तो त्रिशलापुत्र हैं। जब इने-गिने लोग कहते थे कि नहीं, महावीर तो देवानन्दा ब्राह्मणी के पुत्र हैं। यह विरोधी चर्चा जब भगवान् के कानों तक पहुँची तब उन्होंने सच्ची बात कह दी कि मैं तो देवानन्दा का पुत्र हूँ। भगवान् का यही कथन भगवती के नवम शतक में सुरक्षित है। और त्रिशलापुत्र रूप से उनकी जो लोकप्रसिद्धि थी वह आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में सुरक्षित है। उस समय तो विरोध का समाधान भी ठीक-ठीक हो गया—दोनों प्रचलित बातें परम्परा में सुरक्षित रहीं और एक बात एक आगम में तो दूसरी दूसरे आगम में निर्दिष्ट भी हुई। महावीर के निर्वाण के बाद सौ चार सौ वर्ष में जब साधु-संघ में एक या दूसरे कारण से अनेक मतान्तर और पक्षभेद हुए तब आगम-प्रामाण्य का प्रश्न उपस्थित हुआ। जिसने आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध को तो पूरा प्रमाण मान लिया पर दूसरे आगमों के बारे में संशय उपस्थित किया, उस परम्परा में तो भगवान् की एक मात्र त्रिशलापुत्र रूप से प्रसिद्धि रह गई और आगे जाकर उसने देवानन्दा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र होने की बात को बिल्कुल काल्पनिक कह कर छोड़ दिया। यही परम्परा आगे जाकर दिगम्बर परम्परा में समा गई। परन्तु जिस परम्परा ने आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह दूसरे आगमों को भी अक्षरशः सत्य मान कर प्रमाण रूप से मान रखा था उसके सामने विरोध उपस्थित हुआ, क्योंकि शास्त्रों में कहीं भगवान् की माता का त्रिशला रूप से तो कहीं देवानन्दा के रूप से सूचन था। उस परम्परा के लिए एक बात को स्वीकार और दूसरे को इन्कार करना तो शक्य ही न रह गया था। समाधान कैसे किया जाए? यह प्रश्न आचार्यों के सामने आया। असली रहस्य तो अनेक शताब्दियों के गर्भ में छिप ही गया था।

वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ को सातवें महीने में दिव्यशक्ति के द्वारा दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में रखे जाने की जो बात साधारण लोगों में व पौराणिक आख्यानों में प्रचलित थी उसने तथा देवसृष्टि की पुरानी मान्यता ने किसी विचक्षण आचार्य को नई कल्पना करने को प्रेरित किया जिसने गर्भापहरण की अद्भुत घटना को एक आश्चर्य कह कर शास्त्र में स्थान दे दिया। फिर तो अक्षरशः शास्त्र के प्रामाण्य को मानने वाले अनुयायियों के लिए कोई शंका या तर्क के लिए गुन्जाइश ही न रह गई कि वे असली बात जानने का प्रयत्न करें। देव के हस्तक्षेप के द्वारा गर्भापहरण की जो कल्पना शास्त्रारूढ हो गई उसकी असंगति तो महाविदेह के सीमंधर स्वामी के साथ संबन्ध जोड़कर टाली गई फिर भी कर्मवाद के अनुसार यह तो प्रश्न था ही कि जब जैन सिद्धान्त जन्मगत जातिभेद या जातिगत ऊँच-नीच भाव को नहीं मानता और केवल गुण-कर्मानुसार ही जातिभेद की कल्पना को मान्य रखता है तो उसे महावीर के ब्राह्मणत्व पर क्षत्रियत्व स्थापित करने का आग्रह क्यों रखना चाहिए? अगर ब्राह्मण-कुल तुच्छ और अनधिकारी ही होता तो इन्द्रभूति आदि सभी ब्राह्मण गणधर बन कर केवली कैसे हुए? अगर क्षत्रिय ही उच्च कुल के हों तो फिर महावीर के अनन्य भक्त श्रेणिक आदि क्षत्रिय नरक में क्यों कर गए? स्पष्ट है कि जैनसिद्धान्त ऐसी जातिगत कोई ऊँच-नीचता की कल्पना को नहीं मानता पर जब गर्भापहरण के द्वारा त्रिशलापुत्ररूप से महावीर की फैली हुई प्रसिद्धि के समाधान का प्रयत्न हुआ तब ब्राह्मण-कुल के तुच्छत्वादि दोषों की असंगत कल्पना को भी शास्त्र में स्थान मिला और उस असंगति को संगत बनाने के काल्पनिक प्रयत्न में से मरीचि के जन्म में नीचगोत्र बाँधने तक की कल्पना कथा-शास्त्र में आ गई। किसी ने यह नहीं सोचा कि ये मिथ्या कल्पनाएँ उत्तरोत्तर कितनी असंगतियाँ पैदा करती जाती हैं और कर्म-सिद्धान्त का ही खून करती हैं? मेरी उपर्युक्त धारणा के विरुद्ध यह भी दलील हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती है कि भगवान की जननी त्रिशला ही क्यों न हो और देवानन्दा उनकी धातृमाता हो। इस पर मेरा जवाब यह है कि देवानन्दा धातृमाता होती तो उसका उस रूप से कथन करना कोई लाघव की बात न थी। क्षत्रिय के घर पर धातृ-माता कोई भी हो सकती है। देवानन्दा का धातृमाता रूप से स्वाभाविक उल्लेख न करके उसे मात्र माता रूप से निर्दिष्ट किया है और गर्भापहरण की असत् कल्पना तक जाना पड़ा है सो धातृपक्ष में कुछ भी करना न पड़ता और सहज वर्णन आ जाता।

अब हम सुमेरुकम्पन की घटना पर विचार करें। उसकी असंगति तो स्पष्ट है फिर भी इस घटना को पढ़ने वाले के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि आगमों में गर्भापहरण जैसी घटना ने महावीर की जीवनी में स्थान पाया है तो जन्म-काल में अंगुष्ठ मात्र से किए गए सुमेरु के कम्पन जैसी अद्भुत घटना को आगमों में ही स्थान क्यों नहीं दिया है? इतना ही नहीं बल्कि आगमकाल के अनेक शताब्दियों के बाद रची गई निर्युक्ति व चूर्णि जिसमें कि भगवान का जीवन निर्दिष्ट है उसमें भी उस घटना का कोई जिक्र नहीं है। महावीर के पश्चात् कम से कम हजार बारह सौ वर्ष तक में रचे गए और संग्रह किए गए वाङ्मय में जिस घटना का कोई जिक्र नहीं है वह एकाएक सबसे पहिले 'पउम चरियं' में कैसे आ गई? यह प्रश्न कम कुतूहलवर्धक नहीं है। हम जब इसके खुलासे के लिए आस-पास के साहित्य को देखते हैं तो हमें किसी हद तक सच्चा जवाब भी मिल जाता है।

वाल्मीकि रामायण में दो प्रसङ्ग हैं—पहिला प्रसङ्ग युद्धकांड में और दूसरा उत्तरकांड में आता है। युद्धकांड में हनुमान के द्वारा समूचा कैलास-शिखर उठाकर रणाङ्गण में—जहाँ कि घायल लक्ष्मण पड़ा था—ले जाकर रखने का वर्णन है जब कि उत्तर-कांड में रावण के द्वारा समूचे हिमालय को हाथ में तौलने का तथा महादेव के द्वारा अङ्गुष्ठ मात्र से रावण के हाथ में तौले हुए उस हिमालय को दबाने का वर्णन है। इस तरह हरिवंश आदि प्राचीन पुराणों में कृष्ण के द्वारा सात रोज तक गोवर्धन पर्वत को उठाए रखने का भी वर्णन है। पौराणिक व्यास राम और कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों की कथा सुननेवालों का मनोरञ्जन उक्त प्रकार की अद्भुत कल्पनाओं के द्वारा कर रहे हों तब उस वातावरण के बीच रहनेवाले और महावीर का जीवन सुनानेवाले जैन-ग्रन्थकार स्थूल भूमिका वाले अपने साधारण भक्तों का मनोरञ्जन पौराणिक व्यास की तरह ही कल्पित चमत्कारों से करें तो यह मनुष्य-स्वभाव के अनुकूल ही है। मैं समझता हूँ कि अपने-अपने पूज्य पुरुषों की महत्तासूचक घटनाओं के वर्णन की होड़ा-होड़ी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(स्पर्धा में) पड़कर सभी महापुरुषों की जीवनी लिखने वालों ने सत्यासत्य का विवेक कमोबेश रूप से खो दिया है। इसी दोष के कारण सुमेरुकम्पन का प्रसङ्ग महावीर की जीवनी में आ गया है।

तीसरी बात देवसृष्टि की है। श्रमण-परम्परा में मानवीय चरित्र और पुरुषार्थ का ही महत्त्व है। बुद्ध की तरह महावीर का महत्त्व अपने चरित्र-शुद्धि के असाधारण पुरुषार्थ में है। पर जब शुद्ध आध्यात्मिक धर्म ने समाज का रूप धारण किया और उसमें देव-देवियों की मान्यता रखनेवाली जातियाँ दाखिल हुईं तब उनके देवविषयक वहमों की तुष्टि और पुष्टि के लिए किसी-न-किसी प्रकार से मानवीय जीवन में देवकृत चमत्कारों का वर्णन अनिवार्य हो गया। यही कारण है कि महावस्तु और ललितविस्तर जैसे ग्रन्थों में बुद्ध की गर्भावस्था में उनकी स्तुति करने देवगण आते हैं और लुम्बिनी-वन में (जहाँ कि बुद्ध का जन्म हुआ) देव-देवियाँ जाकर पहिले से सब तैयारियाँ करती हैं। ऐसे दैवी चमत्कारों से भरे ग्रन्थों का प्रचार जिस स्थान में हो उस स्थान में रहनेवाले महावीर के अनुयायी उनकी जीवनी को बिना दैवी चमत्कारों के सुनना पसंद करें यह संभव ही नहीं है। मैं समझता हूँ इसी कारण से महावीर की सारी सहज जीवनी में देवसृष्टि की कल्पित छौंट आ गई है।

पुरानी जीवन-सामग्री का उपयोग करने में साम्प्रदायिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण में दूसरा भी एक महान फर्क है, जिसके कारण साम्प्रदायिक भाव से लिखी गई कोई भी जीवनी सार्वजनिक प्रतिष्ठा पा नहीं सकती। वह फर्क यह है कि महावीर जैसे आध्यात्मिक पुरुष के नाम पर चलने वाला सम्प्रदाय अनेक छोटे-बड़े फिरकों में स्थूल और मामूली मतभेदों को तात्त्विक और बड़ा तूल देकर बँट गया है। प्रत्येक फिरका अपनी मान्यता को पुरानी और मौलिक साबित करने के लिए उसका संबंध किसी भी तरह महावीर से जोड़ना चाहता है। फल यह होता है कि अपनी कोई मान्यता यदि किसी भी तरह से महावीर के जीवन से संबद्ध नहीं होती तो वह फिरका अपनी मान्यता के विरुद्ध जानेवाले महावीर-जीवन के उस भाग के निरूपक ग्रन्थों तक को (चाहे वह कितने ही पुराने क्यों न हों) छोड़ देता है, जब कि दूसरे फिरके भी अपनी-अपनी मान्यता के लिए वैसी ही खींचातानी करते हैं। फल यह होता है कि जीवनी की पुरानी सामग्री का उपयोग करने में भी सारा जैन-संप्रदाय एकमत नहीं। ऐतिहासिक का प्रश्न वैसा नहीं है। उसे किसी फिरके से कोई खास नाता या बेनाता नहीं होता है। वह तटस्थ भाव से सारी जीवन-सामग्री का जीवनी लिखने में विवेक-दृष्टि से उपयोग करता है। वह न तो किसी फिरके की खुशामद करता है और न किसी को नाराज करने की कोशिश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है। चाहे कोई फिरका उसकी बात माने या न माने वह अपनी बात विवेक, निष्पक्षता और निर्भयता से कहेगा व लिखेगा। इस तरह ऐतिहासिक का प्रयत्न सत्यमुखी और व्यापक बन जाता है। यही कारण है कि नवयुग उसी का आदर करता है।

अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर-जीवन लिखने की क्या-क्या सामग्री है?

सामग्री के मुख्य तीन स्रोत हैं। साहित्यिक, भौगोलिक तथा परंपरागत आचार व जीवन। साहित्य में वैदिक, बौद्ध और जैन प्राचीन वाङ्मय का समावेश होता है। भौगोलिक में उपलब्ध वे ग्राम, नदी, नगर, पर्वत आदि प्रदेश हैं जिनका संबंध महावीर के जीवन में प्रसङ्ग-प्रसङ्ग पर आता है। परंपरा से प्राप्त वह आचार और जीवन भी जीवनी लिखने में उपयोगी हैं जिनका एक या दूसरे रूप से महावीर के जीवन तथा उपदेश के साथ एवं महावीर की पूर्व परंपरा के और समकालीन परंपरा के साथ संबन्ध है, चाहे वह उस पुराने रूप में भले ही आज न हो और परिवर्तित एवं विकृत हो गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि उक्त सामग्री के किसी भी अंश की उपेक्षा नहीं कर सकती और इसके अलावा भी कोई अन्य स्रोत मालूम हो जाए तो वह उसका भी स्वागत करेगी।

ऊपर जिस सामग्री का निर्देश किया है, उसका उपयोग ऐतिहासिक दृष्टि से जीवनी लिखने में किस-किस तरह किया जा सकता है इस पर भी यहाँ थोड़े में प्रकाश डालना जरूरी है। किसी भी महान् पुरुष की जीवनी को जब हम पढ़ते हैं तब उसके लेखक बहुधा इष्ट पुरुषों की लोगों के मन पर पड़ी हुई महत्ता की छाप को कायम रखने और उसे और भी पुष्ट करने के लिए सामान्य जन-समाज में प्रचलित ऐसी महत्तासूचक कसौटियों पर अधिकतर भार देते हैं और वे महत्ता की असली जड़ को बिल्कुल भुला न दें तो भी उसे गौण तो कर ही देते हैं अर्थात् उस पुरुष की महत्ता की असली चाबी पर उतना भार वे नहीं देते जितना भार साधारण लोगों की मानी हुई महत्ता की कसौटियों का वर्णन करने पर देते हैं। इसका फल यह होता है कि जहाँ एक तरफ से महत्ता का मापदण्ड बनावटी हो जाता है वहाँ दूसरी तरफ से उस पुरुष की महत्ता की असली चाबी का मूल्यांकन भी धीरे-धीरे लोगों की दृष्टि में ओझल हो जाता है। सभी महान् पुरुषों की जीवनियों में यह दोष कमोबेश देखा जाता है। भगवान् महावीर की जीवनी को उस दोष से बचाना हो तो हमें साधारण लोगों की रूढ़ रुचि की पुष्टि का विचार बिना किए ही असली वस्तु का विचार करना होगा।

भगवान् के जीवन के मुख्य दो अंश हैं—एक तो आत्मलक्षी—जिसमें

अपनी आत्मशुद्धि के लिए किए गए भगवान् के समग्र पुरुषार्थ का समावेश होता है। दूसरा अंश वह है जिसमें भगवान् ने परलक्षी आध्यात्मिक प्रवृत्ति की है। जीवनी के पहिले अंश का पूरा वर्णन तो कहीं भी लिखा नहीं मिलता फिर भी उसका थोड़ा-सा पर प्रामाणिक और अतिरंजनरहित प्राचीन वर्णन भाग्यवश आचारांग प्रथम श्रुत स्कंध के नवम अध्ययन में अभी तक सुरक्षित है। इससे अधिक पुराना और अधिक प्रामाणिक कोई वर्णन अगर किसी ने लिखा होगा तो वह आज सुरक्षित नहीं है। इसलिए प्रत्येक ऐतिहासिक लेखक को भगवान् की साधनाकालीन स्थिति का चित्रण करने में मुख्य रूप से वह एक ही अध्ययन उपयोगी हो सकता है। भले ही वह लेखक इस अध्ययन में वर्णित साधना की पुष्टि के लिए अन्य-अन्य आगमिक भागों से सहारा ले; पर उसे, भगवान् की साधना कैसी थी इसका वर्णन करने के लिए उक्त अध्ययन को ही केन्द्रस्थान में रखना होगा।

यद्यपि वैदिक परम्परा के किसी भी ग्रन्थ में भगवान् के नाम तक का निर्देश नहीं है फिर भी जब तक हम प्राचीन[1] शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ और आपस्तम्ब, कात्यायन आदि श्रौत-सूत्र न देखें तब तक हम भगवान् की धार्मिक-प्रवृत्ति का न तो ठीक-ठीक मूल्य आँक सकते हैं और न ऐसी प्रवृत्ति का वर्णन करने वाले आगमिक भागों की प्राचीनता और महत्ता को ही समझ सकते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के जीवन में विविध यज्ञों का धर्मरूप से कैसा स्थान था और उनमें से अनेक यज्ञों में गाय, घोड़े, भेड़, बकरे आदि पशुओं का तथा मनुष्य तक का कैसा धार्मिक वध होता था एवं अतिथि के लिए भी प्राणियों का वध कैसा धर्म्य माना जाता था—इस बात की आज हमें कोई कल्पना तक नहीं हो सकती है जब कि हजारों वर्ष से देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पुरानी यज्ञप्रथा ही बंद हो गई है और कहीं-कहीं व कभी-कभी कोई यज्ञ करते भी हैं तो वे यज्ञ बिल्कुल ही अहिंसक होते हैं।

धर्मरूप से अवश्य कर्तव्य माने जानेवाले पशुवध का विरोध करके उसे आम तौर से रोकने का काम उस समय उतना कठिन तो अवश्य था जितना

---

१. शतपथ ब्राह्मण का० ३ ; अ० ७, ८, ९ । का० ४ ; अ० ६ । का० ५ ; अ० १, २, ५ । का० ६ ; अ० २ । का० ११ ; अ० ७, ८ । का० १२ ; अ० ७ । का० १३ ; अ० १, २, ५ इत्यादि ।
कात्यायन श्रौतसूत्र—अच्युत ग्रन्थमाला भूमिकागत यज्ञों का वर्णन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठिन आज के कत्लखानों में होने वाले पशुवध को बन्द कराना है। भगवान् ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन महान् सन्तों की तरह इस कठिन कार्य को करने में कोर-कसर उठा रखी न थी। उत्तराध्ययन के यज्ञीय अध्ययन में जो यज्ञीय हिंसा का आत्यन्तिक विरोध है वह भगवान् की धार्मिक प्रवृत्ति का सूचक है। यज्ञीय हिंसा का निषेध करने वाली भगवान् की धार्मिक-प्रवृत्ति का महत्त्व और अगले जमाने पर पड़े हुए उसके असर को समझने के लिए जीवनी लिखने वाले को ऊपर सूचित वैदिक-ग्रन्थों का अध्ययन करना ही होगा।

धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मण आदि तीन वर्णों का आदर तो एक-सा ही था। तीनों वर्ण वाले यज्ञ के अधिकारी थे। इसलिए वर्ण की जुदाई होते हुए भी इनमें छुआछूत का भाव न था पर विकट सवाल तो शूद्रों का था। धर्मक्षेत्र में प्रवेश की बात[1] तो दूर रही पर उनका दर्शन तक कैसा अमंगल माना जाता था, इसका वर्णन हमें पुराने ब्राह्मण-ग्रन्थों में स्पष्ट मिलता है। शूद्रों को अस्पृश्य मानने का भाव वैदिक परम्परा में इतना गहरा था कि धार्मिक पशुवध का भाव इतना गहरा न था। यही कारण है कि बुद्ध-महावीर जैसे सन्तों के प्रयत्नों से धार्मिक पशुवध तो बन्द हुआ पर उनके हजार प्रयत्न करने पर भी अस्पृश्यता का भाव उसी पुराने युग की तरह आज भी मौजूद है। इतना ही नहीं बल्कि ब्राह्मण-परम्परा में रूढ़ हुए उस जातिगत अस्पृश्यता के भाव का खुद महावीर के अनुयायियों पर भी ऐसा असर पड़ा है कि वे भगवान् महावीर की महत्ता को तो अस्पृश्यता-निवारण के धार्मिक प्रयत्न से आँकते और गाते हैं फिर भी वे खुद ही ब्राह्मण-परम्परा के प्रभाव में आकर शूद्रों की अस्पृश्यता को अपने जीवन-व्यवहार में स्थान दिए हुए हैं। ऐसी गहरी जड़वाले छुआ-छूत के भाव को दूर करने के लिए भगवान् ने निन्दा-स्तुति की परवाह बिना किए प्रबल पुरुषार्थ किया था और वह भी धार्मिक-क्षेत्र में। ब्राह्मण-परम्परा अपने सर्वश्रेष्ठ यज्ञ-धर्म में शूद्रों का दर्शन तक सहन करती न थी तब बुद्ध आदि अन्य सन्तों की तरह महावीर चाण्डाल जैसे अति शूद्रों को भी अपने साधुसंघ में वैसा ही स्थान देते थे जैसा कि ब्राह्मण आदि अन्य वर्णों को। जैसे गांधीजी ने अस्पृश्यता को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिए शूद्रों को धर्ममन्दिर में स्थान दिलाने का प्रयत्न किया है वैसे ही महावीर ने अस्पृश्यता को उखाड़ फेंकने के लिए शूद्रों को मूर्धन्यरूप अपने साधुसंघ में स्थान दिया था। महावीर के बाद ऐसे किसी जैन आचार्य या गृहस्थ का इतिहास नहीं मिलता कि जिसमें उसके द्वारा अति शूद्रों को साधु-संघ

---

१. शतपथ ब्राह्मण का० ३, अ० १ ब्रा० १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में स्थान दिए जाने के सबूत हों। दूसरी तरफ से सारा जैन समाज अस्पृश्यता के बारे में ब्राह्मण-परम्परा के प्रभाव से मुक्त नहीं है। ऐसी स्थिति में उत्तराध्ययन जैसे प्राचीन ग्रन्थ में एक चांडाल को जैन दीक्षा दिए जाने की जो घटना वर्णित है[१] और अगले जैन तर्क-ग्रन्थों[२] में जातिवाद का जो प्रबल खण्डन है उसका क्या अर्थ है? ऐसा प्रश्न हुए बिना नहीं रहता। इस प्रश्न का इसके सिवाय दूसरा कोई खुलासा ही नहीं है कि भगवान् महावीर ने जातिवाद[३] का जो प्रबल विरोध किया था वह किसी न किसी रूप में पुराने आगमों में सुरक्षित रह गया है। भगवान् के द्वारा किए गए इस जातिवाद के विरोध के तथा उस विरोध के सूचक आगमिक भागों के महत्त्व का मूल्यांकन ठीक-ठीक करना हो तो भगवान् की जीवनी लिखने वाले को जातिवाद के समर्थक प्राचीन ब्राह्मण-ग्रंथों को देखना ही होगा।

महावीर ने बिल्कुल नई धर्म-परम्परा को चलाया नहीं है किन्तु उन्होंने पूर्ववर्ती पार्श्वनाथ की धर्म-परम्परा को ही पुनरुज्जीवित किया है। वह पार्श्वनाथ की परम्परा कैसी थी, उसका क्या नाम था इसमें महावीर ने क्या सुधार या परिवर्तन किया, पुरानी परम्परावालों के साथ संघर्ष होने के बाद उनके साथ महावीर के सुधार का कैसे समन्वय हुआ, महावीर का निज व्यक्तित्व मुख्यतया किस बात पर अवलम्बित था, महावीर के प्रतिस्पर्धी मुख्य कौन-कौन थे, उनके साथ महावीर का मतभेद किस-किस बात में था, महावीर आचार के किस अँश पर अधिक भार देते थे, कौन-कौन राजे-महाराजे आदि महावीर को मानते थे, महावीर किस कुल में हुए इत्यादि प्रश्नों का जवाब किसी न किसी रूप में भिन्न-भिन्न जैन-आगम-भागों में सुरक्षित है। परन्तु वह जवाब ऐतिहासिक जीवनी का आधार तभी बन सकता है जब कि उसकी सच्चाई और प्राचीनता बाहरी सबूतों से भी साबित हो। इस बारे में बौद्ध-पिटक के पुराने अंश सीधे तौर से बहुत मदद करते हैं क्योंकि जैसा जैनागमों में पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का वर्णन है[४] ठीक वैसा ही चातुर्याम निर्ग्रंथ धर्म का निर्देश बौद्ध पिटकों में भी है[५]। इस बौद्ध उल्लेख से महावीर के पञ्चयाम धर्म के सुधार की जैन शास्त्र में

---

१. अध्ययन १२।

२. सन्मतिटीका पृ० ६९७। न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ७६७, इत्यादि।

३. उत्तराध्ययन अ० २५ गाथा ३३।

४. उत्तराध्ययन अ० २३। भगवती श० २. उ० ५ इत्यादि।

५. दीघनिकाय-सामञ्ञफलसुत्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णित घटना की ऐतिहासिकता साबित हो जाती है। महावीर खुद नग्न-अचेल थे फिर भी परिमित व जीर्ण वस्त्र रखनेवाले साधुओं को अपने संघ में स्थान देते थे ऐसा जो वर्णन आचारांग-उत्तराध्ययन में है उसकी ऐतिहासिकता भी बौद्ध ग्रन्थों से साबित हो जाती है क्योंकि बौद्ध ग्रन्थों में अचेल और एकसाटकधर[1] श्रमणों का जो वर्णन है वह महावीर के अचेल और सचेल साधुओं को लागू होता है। जैन आगमों में महावीर का कुल ज्ञात कहा गया है, बौद्ध पिटकों में भी उनका वही कुल[2] निर्दिष्ट है। महावीर के नाम के साथ निर्ग्रन्थ विशेषण बौद्ध ग्रन्थों में आता है जो जैन वर्णन की सच्चाई को साबित करता है। श्रेणिक-कोणिकादि राजे महावीर को मानते थे या उनका आदर करते थे ऐसा जैनागम में जो वर्णन है वह बौद्ध पिटकों के वर्णन से भी खरा उतरता है। महावीर के व्यक्तित्व का सूचक दीर्घतपस्याका वर्णन जैनागमों में है उसकी ऐतिहासिकता भी बौद्ध ग्रन्थों से साबित होती है। क्योंकि भगवान् महावीर के शिष्यों का दीर्घतपस्वी रूप से निर्देश उनमें आता है[3]। जैनागमों में महावीर के विहारक्षेत्र का जो आभास मिलता है वह बौद्ध पिटकों के साथ मिलान करने से खरा ही उतरता है। जैनागमों में महावीर के बड़े प्रतिस्पर्द्धी गोशालक का जो वर्णन है वह भी बौद्ध पिटकों के संवाद से सच्चा ही साबित होता है। इस तरह महावीर की जीवनी के महत्त्व के अंशों को ऐतिहासिक बतलाने के लिए लेखक को बौद्ध पिटकों का सहारा लेना ही होगा।

बुद्ध और महावीर समकालीन और समान क्षेत्रविहारी तो थे ही पर ऐतिहासिकों के सामने एक सवाल यह पड़ा है कि दोनों में पहिले किसका निर्वाण हुआ? प्रोफेसर याकोबी ने बौद्ध और जैन ग्रन्थों की ऐतिहासिक दृष्टि से तुलना करके अन्तिम निष्कर्ष निकाला है कि महावीर का निर्वाण बुद्ध-निर्वाण के पीछे ही अमुक समय के बाद ही हुआ है[4]। याकोबी ने अपनी गहरी छानबीन से यह स्पष्ट कर दिया है कि वज्जि-लिच्छिवियों का कोणिक के साथ जो युद्ध हुआ था वह बुद्ध-निर्वाण के बाद और महावीर के जीवनकाल में ही हुआ। वज्जि-

---

१. अंगुत्तर भाग. १. १५१। भाग. २, १९८। सुमङ्गलाविलासिनी पृ० १४४

२. दीघनिकाय-सामञ्ञफलसुत्त इत्यादि इत्यादि।

३. जैसी तपस्या स्वयं उन्होंने की वैसी ही तपस्या का उपदेश उन्होंने अपने शिष्यों को दिया था। अतएव उनके शिष्यों को बौद्ध ग्रन्थ में जो दीर्घ-तपस्वी विशेषण दिया गया है उससे भगवान् भी दीर्घतपस्वी थे ऐसा सूचित होता है। देखो मज्झिमनिकाय-उपालिसुत्त ५६।

४. 'भारतीय विद्या' सिंघी स्मारक अङ्क पृ० १७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिच्छिवी-गण का वर्णन तो बौद्ध और जैन दोनों ग्रन्थों में आता है पर इनके युद्ध का वर्णन बौद्धग्रन्थों में नहीं आता है जब कि जैनग्रन्थों में आता है। याकोबी का यह ऐतिहासिक निष्कर्ष महावीर की जीवनी लिखने में जैसा-तैसा उपयोगी नहीं है। इससे ऐतिहासिक लेखक का ध्यान इस तत्त्व की ओर भी अपने आप जाता है कि भगवान् की जीवनी लिखने में आगमवर्णित छोटी बड़ी सब घटनाओं की बड़ी सावधानी से जाँच करके उनका उपयोग करना चाहिए।

महावीर की जीवनी का निरूपण करने वाले कल्पसूत्र आदि अनेक दूसरे भी ग्रन्थ हैं जिन्हें श्रद्धालु लोग अक्षरशः सच्चा मान कर सुनते आए हैं पर इनकी भी ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन करने पर मालूम हो जाता है कि उनमें कई बातें पीछे से औरों की देखादेखी लोकरुचि की पुष्टि के लिए जोड़ी गई हैं। बौद्ध महायान परम्परा के महावस्तु, ललितविस्तर जैसे ग्रन्थों के साथ कल्पसूत्र की तुलना बिना किए ऐतिहासिक लेखक अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकता। वह जब ऐसी तुलना करता है तब उसे मालूम पड़ जाता है कि भगवान् की जीवनी में आनेवाले चौदह स्वप्नों का विस्तृत वर्णन तथा जन्मकाल में और कुमारावस्था में अनेक देवों के गमनागमन का वर्णन क्यों और कैसे काल्पनिक तथा पौराणिक है।

भगवान् पार्श्वनाथ का जन्मस्थान तो वाराणसी था, पर उनका भ्रमण और उपदेश-क्षेत्र दूर-दूर तक विस्तीर्ण था। इसी क्षेत्र में वैशाली नामक सुप्रसिद्ध शहर भी आता है जहाँ भगवान् महावीर जन्मे। जन्म से निर्वाण तक में भगवान् की पादचर्या से अनेक छोटे-बड़े शहर, कस्बे, गाँव, नदी, नाले, पर्वत, उपवन आदि पवित्र हुए, जिनमें से अनेकों के नाम व वर्णन आगमिक साहित्य में सुरक्षित हैं। अगर ऐतिहासिक जीवनी लिखनी हो तो हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम उन सभी स्थानों का आँखों से निरीक्षण करें। महावीर के बाद ऐसे कोई असाधारण और मौलिक परिवर्तन नहीं हुए हैं जिनसे उन सब स्थानों का नामोनिशान मिट गया हो। ढाई हजार वर्षों के परिवर्तनों के बावजूद भी अनेक शहर, गाँव, नदी, नाले, पर्वत आदि आज तक उन्हीं नामों से या थोड़े बहुत अपभ्रष्ट नामों से पुकारे जाते हैं। जब हम महावीर की जीवनचर्या में आने वाले उन स्थानों का प्रत्यक्ष निरीक्षण करेंगे तब हमें आगमिक वर्णनों की सच्चाई के तारतम्य की भी एक बहुमूल्य कसौटी मिल जाएगी, जिससे हम न केवल ऐतिहासिक जीवन को ही तादृश चित्रित कर सकेंगे बल्कि अनेक उलझी गुत्थियों को भी सुलझा सकेंगे। इसलिए मेरी राय में ऐतिहासिक लेखक के लिए कम से कम भौगोलिक भाग का प्रत्यक्ष्य परिचय घूम-घूम कर करना जरूरी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक जीवनी लिखने का तीसरा महत्त्वपूर्ण साधन परम्परागत आचार-विचार है। भारत की जनता पर खास कर जैनधर्म के प्रचारवाले भागों की जनता पर महावीर के जीवन का सूक्ष्म-सूक्ष्मतर प्रभाव देखा जा सकता है; पर उसकी अमिट और स्पष्ट छाप तो जैन-परम्परा के अनुयायी गृहस्थ और त्यागी के आचार-विचारों में देखी जा सकती है। समय के हेर-फेर से, बाहरी प्रभावों से और अधिकार-भेद से आज के जैन-समाज का आचार-विचार कितना ही क्यों न बदला हो; पर यह अपने उपास्य देव महावीर के आचार-विचार के वास्तविक रूप की आज भी झाँकी करा सकता है। अलबत्ता इसमें छानबीन करने की शक्ति आवश्यक है। इस तरह हम ऊपर सूचित किए हुए तीनों साधनों का गहराई के साथ अध्ययन करके महावीर की ऐतिहासिक जीवनी तैयार कर सकते हैं, जो समय की माँग है।

ई० १९४७]